गीत दशक – एक

सम्पादक

कृष्ण कान्त शुक्ल

प्रकाशक
सानुबन्ध प्रकाशन (प्रा०) लि०
डी – २७३, इन्दिरा-नगर,
लखनऊ – २२६ ०१६

गीत दशक - एक

प्रथम सस्करण
१९९५

सम्पादक
कृष्ण कान्त शुक्ल

मूल्य ३५/-

मुद्रक
सानुवन्ध प्रकाशक (प्रा०) लि०
डी-२७३, इन्दिरा नगर,
लखनऊ - २२६ ०१६
दूरभाष ३८१०७२ ३८२८५४

GEET DASHAK EK : Edited by Krishna Kant Shukla, Price Rs 35.

भूमिका

जीवन के अन्तर्मिश्र परिवेश ही मानसिकता के अनेक रंगों और बिम्बों का सृजन करते है। इनमें से मनुष्य तक की अपनी-अपनी गाथायें हैं, जिनकी रसात्मक अनुभूति से द्रष्टा, श्रोता अथवा पाठक रसप्लावित होते है।

दस कवियों के पाँच पाँच गीतों से सम्बद्ध 'गीत दशक' आपके हाथों में है। पढ़ें और आनन्द लें।

ग्राम्य जीवन के अतीत से जुड़ी अनुभूतियों का सहज और सजीव चित्रण कविवर श्री अवध बिहारी रावत की छन्द रचना का मर्म है। रचना पाठ करते समय लगता है जैसे अतीत की सारी अनुभूतियाँ वर्तमान का पर्याय बनकर साकार हो उठी है

बार-बार झाँकता रसोई
क्या माँ की रोटियाँ सिक गईं।
फीस जमा करने की खातिर
दरवाजे की नीम बिक गई।

प्राकृतिक उपमाओं के परिवेश में, मानसिक ऊहापोह का हर बिम्ब उजागर करने की धुन में श्री नरेन्द्र पाण्डेय अपने हर गीत में कहीं-कहीं अपनी नयी स्थापनाओं के माध्यम से पाठक की चिन्तन-धारा को प्रभावित करते है

चेतना से दूर हटकर,
चाहता मन,
खूबसूरत भूल में जीना।
अथवा
जिन्दगी है वर्जनाओं की परिधियाँ
आस्था के श्वेत केतु, श्याम हो गये।

किसी भी वस्तुस्थिति के उजागर परिणामों को, अपनी गीत धारा में आत्मसात् कर, कविवर सुनील बाजपेयी बड़े सहज भाव से चित्रात्मक बिम्ब-रचना में रचा-बसा लेते है। हवाओं का गीत हो या दीप-विसर्जन अथवा कामना और नियति-गीत की हर आख्या में नियति का अपना सत्य सहजता से व्याख्यायित है

हवाओं पर लिख सका है
कौन अपना नाम।
पक्तियों में बहे या बिखर कर,
साथ सबके अदेखी व्यथा है।
कौन जाने कहाँ ले चली है,
धार हमको सहेजे सम्हाले।
कामना सबको यहाँ छलती रही,
वेदना की वर्तिका जलती रही।
सतरगा आभास श्वासों में भरे,
आयु नन्हें पग बढा चलती रही।

कविवर शतदल के पाँचों गीतों में बदलती मानसिकता के अलग-अलग रगों की छटा का दर्शन, आक्रोश की स्थिति में रगीन फागुन में विकर्षण की गहमा-गहमी है

फागुन तुममें कोई आकर्षण रहा नहीं,
टूट रहे कन्धे परम्परायें ढोते,
तुमने मेरे जैसा समय तो सहा नहीं,

प्यास का मूल्याकन करते समय वे लिखते है

प्यास निगोडी जादूगरनी,
जल से बुझे न जाय अगिन सी।

मगन मन हुआ तो घर की छरहरी बेल के सौन्दर्य में डूब गये

घर में फैली बेल छरहरी,
फूली गमलों में गुलमेंहदी।

लोक जीवन, प्राकतिक परिवेश में जब अपने निजत्व बोध से जुडा होता है तब कल्पनाओं के अनेक बिम्ब अभिव्यक्ति को नया स्वर प्रदान करते है

देह के भीतर रहे
औ' देह के बाहर रहे
हम सफर में भी रहे
लेकिन महासागर रहे।

कविवर वीरेन्द्र आस्तिक समग्रता के महत्व को कई रूपों में स्वीकार करते हुए लिखते है

चाहे की चाई जात न हो
बीती रातें पर बात न हो,
हम ह धरती-मन्दिर भर है
ईश्वर पास नज़र आता है।

प्रकृतिक सौन्दर्य में डूबने पर भी आस्तिक चिंतन है

झुरमुटों क शहनियाने,
हरियों की झालरें।
दूब की कालीन पर,
पखुरी प्रसूनों की परें।

सरस कवि विनोद तरुण का हर गीत अपनी परिवेशात्मक सौन्दर्यात्मक भूमि न हर पाठक की चेतना को बरबस जोड़ लेने में सक्षम है। गीतों की हर पंक्ति अर्थों क कूट बिम्ब सँजोए हुए, भीतरी मन्तव्यों के मार्ग का विस्तार करती है

वो लहराते केश जूड़ा खुल रहा होगा,
फिर कपोलों का विमल तन धुल रहा होगा।

गरमाई साँसों का शीतल सम्मोह
आज वहीं ठहर गयी जलती-सी छाँव

प्रणयी की अतृप्त आस्था जब अपनी कल्पना के पंखों का सहारा लेकर अपने दूरस्थ प्रणय-बिन्दु की परिक्रमा करती है, तब उसकी स्वप्निल पलकों पर सम्मोहन के इन्द्रधनुषी रंगों की छटा से गीत का हर छन्द अपने आप अभिषिक्त हो जाता है। श्री रजन अधीर के पाँचों गीतों में भावुकतापूर्ण ऐसे कितने ही आयाम है जो चित्रात्मकता की कसौटी पर खरे उतरते है

तटों पर बैठ कर जिसके,
बनाये जल महल अनगिन।
नहीं मालूम था मन को,
समय भी गिन रहा है दिन।
वो अँधेरे क्या बुरे थे?
गंध भी सहवास था।
बन्द आँखों में निरंतर
रूप का अहसास था।

प्रकाश-छाया, सुख-दुख, उल्लास और कारुणिक सदर्भ अनादि काल स मानव-जीवन मे, अपनी भूमिकाओं का विलक्षणता से विस्तार करते आ रहे है। गहराई से परखा जाय तो इनके भिन्नातिभिन्न बिम्वों की रचना उसके अपन मन क द्वारा होती है। कविवर लोकेश शुक्ल के पाँचों गीतों की स्थितियाँ एक-दूसरे स भिन है फिर भी लयात्मक ताने-बाने में, कवि ने सहजता से उनके बिम्बों को सँवारा और रूप दिया है । देखें

कभी धूप में, कभी छाँव में
मन के ठौर निराले देखे।
दिन सुनहरी धूप का झरना हुआ
साँझ मदिर, दीप का धरना हुआ
राम जाने हर घडी क्यूँ लग रहा
नील नभ जैसे घिरा हो प्यास में
अथवा -
मेरे भीतर पतझर सावन
बादल, बिजली करते बातें
पीडा की चादर ओढे है
खुशियों की सारी सौगातें

मन की टूटन और उसके मूक सघात मानव की अपनी अभिव्यक्तियों के स्वरों को कभी-कभी दार्शनिक आख्याओं की ओर मोड देते है। सुश्री अजनी सरीन के पाँचों गीतों में, हर स्थिति का अपना रग और अहसास है जो पाठक के मन पर सीधा और त्वरित प्रभाव डालता है। उदाहरणस्वरूप कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत है

घायल सडकों के सग मेरा, शहर अकेला ही रहता है
जब जब सम्बन्धों के माथे
पर सलवट उभरा करती है
गीत उदास हुआ करते है
रह-रह कर आँखें भरती है।
बन्द घरों में चीखें गुम है, फिर भी सब होता रहता है।
अथवा-
बूँद इस तरह नदी लगी
हर लहर में आहटें जगीं

उग रहे हैं रेत नीर से
आँख देखती ठगी-ठगी।

सत्यान्वेषी दृष्टि भावुकता के आवरण में भी, नियति की अदृश्य धारा के सच को उजागर करती है जिसे दूध का दूध और पानी का पानी कहा गया है। गीत दशक दो में कवि श्री कृष्ण कान्त शुक्ल के चार गीत संकलित हैं।

ओजस्वी प्रभाव के धनी श्री शुक्ल व गीतों के काव्य-प्रवाह ने जिन प्राकृतिक प्रतिमानों को अपनाया गया है, उनका विश्लेषण सर्वाधिकात्मक अर्थों से जुड़ा है तथा उनके हर चरण के अन्त में भावुक व्यक्ति के लिए उद्बोधन का स्वर ध्वनित होता है, जैसे

जहाँ पर मिलते धरती गगन
वहाँ खिलते पतझड़ के सुमन
लगता तो संयोग मगर है
दोष दृष्टि का फेर समझ का
ऐसा तपता हुआ धरातल
जिस पर दिखता लहर-लहर जल
शीतलता पाने जब दौड़
जलता है तलवे तक का तल
उर में भरती जाती उलझन
ह्रस्व होते जाते तन-मन
लगता तो संयोग मगर है
दोष दृष्टि का फेर समझ का

अथवा

याद के क्षण त्रासदायी भूल पाना सीख लो तुम
जो जिय पल हो चुके हैं
फिर न रमना उचित उनमें
दर्द दे जाते अमूमन
टीस भर जाते बदन में
स्वप्न जैसा विगत जिससे निकल आना सीख लो तुम

भावुक अवस्था के पाँचों गीतों का प्रभावी ढग से निर्वाह हुआ है, जिनकी चित्रात्मक छटा लुभावने रग से पाठक के मन में घर करती है, जैसे

ओट लिये दरवाजे की तुम
एकटक रही देखती मुझको
मैं भी ठगा-ठगा-सा खोया
अपलक रहा देखता तुमको
नयनों से पा नेह निमत्रण
काजल बन कर सज जाऊँ मैं

प्रस्तुत गीत सकलन 'गीत दशक' के चुने हुए पचास गीत, गीत-रचना की कसौटी पर प्रभावी ढग से खरे उतरे है। काव्य-रसिकों से उन्हें समुचित आदर और अपनापन मिलेगा, इस कामना के साथ, इस सकलन के सग्रह और प्रकाशन से जुडे महानुभावों को मेरा साधुवाद।

शुभाकाक्षी
सिद्धेश्वर अवस्थी
अवस्थी एण्ड कम्पनी
कचहरी रोड
सिविल लाइन्स
कानपुर, (उ०प्र०)

२६ अगस्त, १९९४

प्राक्कथन

'गीत दशक' - एक प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। कुछ दि पूर्व श्री रामकृष्ण 'प्रेमी' से बातचीत हो रही थी कि अचानक बात यहीं आकर अटक गई कि गीतक पर कोई सकलन अपने कानपुर का होना चाहिए। अस्तु, यहीं से इस कार्य का शुभारम्भ हुआ औ दो भागों में बाँटकर गीत सकलन निकालने का सकल्प लिया गया। श्री राम कृष्ण 'प्रेमी' जी गीतों को सकलित करने का कार्यभार लिया जो मेरे लिए दुष्कर था और उन्होंने इस कार्य को [illegible] एक माह में पूरा कर दिया । इसके लिए मैं उनका आभार प्रदर्शित करता हूँ। भूमिका [illegible] देने के लिए आदरणीय सिद्धेश्वर अवस्थी से अनुरोध किया गया जिसे उन्होंने [illegible] के बावजूद स्वीकार किया और एक माह के अन्दर ही यह कार्य पूरा कर उन्होंने इस [illegible] गरिमा बढाई । इस कठिन कार्य का सम्पादन करने का मैंने दुस्साहस किया है। [illegible] रह गई हों, उन्हें यदि आप सुधीजन अवगत कराने की कृपा करें, तो [illegible] सब साथी कवि मित्रों का, जिन्होंने विशेष रुचि देकर इस कार्य में [illegible] बहुत-बहुत आभार ज्ञापित करता हूँ। आपको यह जानकर दुःख होगा कि [illegible], जिन्हें गीत दशक में सम्मानपूर्वक शामिल होना था, वा [illegible] हो गया। ईश्वर उनको अजर - अमर करे।

गीत दशक - एक

परिचय

नाम	-	अवध बिहारी श्रीवास्तव
पिता	-	श्री बशीधर लाल
जन्म-स्थान	-	ग्राम पो अनेई
जिला	-	वाराणसी
जन्म-तिथि	-	१ अगस्त, १९३५
प्रकाशन	-	काव्य सग्रह 'हल्दी के छापे' प्रकाशित
सम्पर्क - सूत्र	-	एम आई जी ७, 'गगा विहार', कानपुर - १

गीत - एक

बदल गया है सब कुछ लेकिन
चेतन में अवचेतन में
डक चुभोते ही रहते है पाई-पाई वाले दिन।

सगमरमरी फर्श अचानक
होती हाथ लिपी अँगनाई
उजले पाँवों में दिखती है
माँ बाबू की फटी बिवाई।

जाडे के दिन कच्चे रस्ते
पाँवों में कक्कड चुभ जाना।
दिन बीते पर उन रस्तों तक
बद नहीं मन का हो आना।

जाने कब रोशनदानों से
कैसे दबे पाँव आकर

सिल्क लिहाफों में घुस आते फटी रजाई वाले दिन।
डक चुभोते ही रहते है पाई-पाई वाले दिन।

बार-बार झाँकना रसोई
क्या माँ की रोटियाँ सिक गईं
फीस जमा करने की खातिर
दरवाजे की नीम बिक गई।

छोटी बहन तेज थी कितनी
दुनिया में गुमनाम खो गई।

लाल रिबन बाँधे चोटी में

अब ता उत्सव में मण्डप में
मै उदास हो जाता हूँ,

आँखो मे तिरते रहते है वे कठिनाई वाले दिन।
डक चुभोते ही रहते है पाई पाई वाले दिन।

सँझवातो के आगे झुकना
आँचल से माथे को छूना।
दादी की उन शुभ छवियों से
अब घर कितना सूना-सूना।

बाबा ने पोखरा नहा कर
शिव मदिर में शीश नवाया।
माँ ने गीली धोती ओढे
तुलसी पर जो अर्घ्य चढाया।

उन्ही प्रार्थनाओं का प्रतिफल
अब हम किसको लौटाएँ

जाने कहाँ गए वे देकर हमें रुलाई वाले दिन।

बदल गया है सब कुछ लेकिन,
चेतन में अवचेतन में
डक चुभोते ही रहते है पाई-पाई वाले दिन।

गीत - दो

एक घर है मजिलों में हम सभी
किन्तु दरवाजे हमारे बद है ।

सीढियों से हम निकलते सहम कर
दूसरा कब क्या करे किसको पता ।
कल यहीं पर हादसा कोई हुआ
कह रहे इसको पता उसको पता ।
और चारों ओर डर फैला हुआ
बज रहे अफवाह वाले छद है ।

एक घर है मजिलों में हम सभी
किन्तु दरवाजे हमारे बद है ।

पक रही खिचडी घरों में शाम से
खिडकियाँ भी बद है फैला धुआँ ।
रोशनी कब चाहते हम देखना,
रास आता है हमें अधा कुआँ ।
आप चादर चुप्पियों की ओढ लो
बात करने पर कई प्रतिबध है ।

एक घर है मजिलों में हम सभी
किन्तु दरवाजे हमारे बद है ।

घुट रही है साँस बच्चों की यहाँ
वे उठेंगे तोड देंगे खिडकियाँ,
और ताजी हवा आने के लिए
खोल देंगे द्वार लडके-लडकियाँ ।
वे हमारी अर्गलायें क्यों सहें
वे समय के पार है स्वच्छन्द है ।

एक घर है मजिलों में हम सभी
किन्तु दरवाजे हमारे बद है ।

गीत - तीन

नदी के धार पर बैठे
नदी को दखते रहना,
मगर बीत दिनों की बात
फिर जल से नहीं कहना ।

अभी वह पेड पीपल का
वही होगा जहाँ हम तुम,
कभी हँसते हुए बैठे
कभी बैठे रहे गुमसुम ।

वहाँ के चित्र कुछ पूछें
तुम्हारी इस उदासी से,
न कहना कुछ दिखा देना
नदी की धार का बहना।

नदी के घाट पर बैठे
नदी को देखते रहना,
मगर बीते दिनों की बात
फिर जल से नहीं कहना ।

अँगुलियों से लिखे थे नाम
रेती पर जहाँ तुमने,
डुबोये पाँव पानी में
उछाले जल जहाँ हमने ।

वहाँ जल में उतरना मत
अकेले याद में खोये
नदी भी सह न पायेगी
तुम्हारी देह का दहना ।

नदी के घाट पर बैठे
नदी को देखते रहना
मगर बीते दिनों की बात
फिर जल से नहीं कहना ।

जलाये दीप के जोड़े
उतारे नदी के जल में,
अचानक हो गये हम भी
नदी उस एक ही पल में,

न जाने कब नदी आकर
हमारे साथ सो जाती,
भिगो देती मगर मुश्किल
नदी के ताप को सहना ।

नदी के घाट पर बैठे
नदी को देखते रहना
मगर बीते दिनों की बात
फिर जल से नहीं कहना ।

गीत - चार

तुम हो एक नदी अपने को
चेतन सागर तक बहने दो ।

तुमने राह चुनी है उस पर
बैठी है पत्थर मुद्राएँ

उनको सहज भाव से लेना
आयेंगी जल भरी घटाएँ

फिर तो तेज धार में पत्थर
डूबेंगे या बह जायेंगे,

भीतर बहता उजला पानी
बाहर जैसा है रहने दो ।

तुम हो एक नदी अपने को
चेतन सागर तक बहने दो ।

घाटों को पानी देने से
कोई नदी उदास न होती ।

वह सागर तक कैसे जाती
यदि सागर की प्यास न होती ।

नदी किनारे उत्सव मेले
शोर बहुत तुमको क्या लेना

मौन तुम्हारा तुमसे जो कुछ
कहता है उसको कहने दो ।

तुम हो एक नदी अपने को
चेतन सागर तक बहने दो ।

गीत - पाँच

मन ही है सारथी देह का
सारा खेल यहाँ है मन का ।

चिन्ता जितनी ज्यादा होगी,
चिन्तन उतना बने असंभव
अलग-अलग भाषा दोनों की
अलग-अलग दोनों के अनुभव ।

चिन्ता बहिर्मुखी कर देती
अन्तर्मुखी मार्ग चिन्तन का ।
सारा खेल यहाँ है मन का ।

सबके पास वृत्त संशय के
खुद से पूछो क्या करना है ।
भीतर उतरो तो जानोगे
क्या जीना है क्या मरना है ।

जल से बादल बादल से जल
यही नियम है परिवर्तन का ।
सारा खेल यहाँ है मन का ।

रेती पर चलते जाओगे
पानी का भ्रम भरमायेगा ।
बादल आने तक रुक जाना
पूरा प्राण भीग जायेगा ।

जितना सहज रखोगे मन को
उतना सहज रिदम हो तन का ।
सारा खेल यहाँ है मन का ।

मन ही है सारथी देह का
सारा खेल यहाँ है मन का ।

परिचय

नाम	-	नरेन्द्र पाण्डेय
पिता	-	स्वर्गीय प जगन्नाथ पाण्डेय
जन्म	-	१ फरवरी, १९४२
ग्राम	-	भँवरूपुर, पो पलिवार
जिला	-	गाजीपुर
शिक्षा	-	एम ए

लेखन - १९६० से कविता, गीत/नवगीत, मुक्तक, गजलें। विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं एव सकलनों में गीत/नवगीत, गजल, मुक्तक आदि का प्रकाशन एव आकाशवाणी के 'स्वर वेला' तथा दूरदर्शन के 'सरस्वती' कार्यक्रम में प्रसारण।

सम्प्रति - प्राविधिक शिक्षा निदेशालय उ प्र कानपुर में वरिष्ठ सम्प्रेक्षक के पद पर कार्यरत

सम्पर्क सूत्र - १०४ ए/६३, रामबाग, कानपुर

गीत - एक

इन्द्रधनुष उतरा है
बादल के गाँव
पिया तेज चलो ।

पंख खुले विहगों के
नीडों की ओर
सन्ध्या के नील अधर
पीते हैं शोर

स्वप्न-स्वप्न उभरा है
आँचल के गाँव
पिया तेज चलो ।

डालने लगा जादू
नौजवान मौसम
अम्बर तक लहराये
पावस का परचम

सम्मोहन ठहरा है
काजल के गाँव
पिया तेज चलो ।

प्यासा रह जायेगा
पिंजरे का सुअना,
कौन धरेगा आखिर
तुलसी पर दियना

प्यार गीत बिखरा है
माँदल के गाँव
पिया तेज चलो ।

गीत - दो

चेतना से दूर होकर
चाहता मन
खूबसूरत भूल में
जीना,
शान्त सोई घाटियों में
कसमसाती
खुशबुओं की वारुणी
पीना,

बन्द क्यों है
बादलों में
ये हवायें
व्योम का घुलना जरूरी है।

जिन्दगी है
वर्जनाओं की परिधियाँ
कामना है
खूबसूरत फूल हो जाना,
एक रेतीले धरातल पर
नदी के
चाँदनी के संग होना
और खो जाना,

जोड लो
अनुबन्ध
रस-क्षण के लिए
नेह का घुलना जरूरी है।

गीत - तीन

घुल गया है क्षोभ
बन कर
मोम की काया,
काँपता है
गध पापी
गीत
अनगाया ।

चाँदनी का एक टुकड़ा
हाथ में केवल
यामिनी के वास्ते तम
बन गया हलचल,

सीपियों वाले
दृगों में
अश्रु के
मोती
या कि सरवर
सन्तरण को
हस-दल
आया ।

रिक्तता का एक नक्शा
हवा में हिलता,
कल्पना का एक किसलय
धूप में जलता,
विकल क्षण
इतिहास

बनने के लिए
आतुर,
गीत अँजुरी में
सजल
सत्रास
भर आया।

तैरता है जोड़-बाकी-सा
विगत अनुभव
नीड़ में सोया हुआ है
स्वप्न का कलरव,
सधि-पथ-गामी

बने जन
तेवरों वाले
सब कहीं आड़ी लकीरों की पड़ी छाया।

गीत - चार

सूर्यमुखी दिन
घायल हो गया।

आशा के स्वर्ण पंख
उड़ चले गगन
टुकड़े हो बिखर गये
झील के सपन,

आँगन-आँगन
काजल हो गया।

आस्था के श्वेत केतु
श्याम हो गये
शब्द नाम वाले
बदनाम हो गये,

गीत दर्द का
पायल हो गया।

प्रश्नों की यात्राएँ
भीड़-भरी शाम
गर्द भरी आँखों में
नींद है हराम
यायावर मन
बादल हो गया।

गीत - पाँच

बालू के पथ में जोड लिया
रजनीगधा वाला रिश्ता
चाँदनी झील में उतर गई
दूधिया हुआ जल का दर्पन ।

खामोश रात के हाथों ने
खुशबू लिख डाली लहरों पर
हो गीत गई लय में कविता
बाँसुरी आ गई अधरों पर

रगों में डूबी नीरवता
हो गया मुखर दृग का निर्जन ।

अम्बर की उजली राहों से
सपने शीशे के घर आये
ज्यों चाँदी के गुलदानों में
आवारा फूल जगह पाये

रसधारा में बोरी अँजुरी
भर दिया हवाओं ने कम्पन ।

छवि के भूगोल पढे लोचन,
सुरभित हरियाली के तन में
आखिर ऐसा मौसम आया
मन बहक गया चन्दन वन में

मिल गया प्रयाग प्रतीक्षा का
फिर महक गया प्यासा यौवन ।

परिचय

नाम - राम प्रकाश शुक्ल 'शतदल'

जन्मतिथि - २५ अक्तूबर, १९४४ (कानपुर)

शिक्षा - अपूर्ण स्नातक

भाषा ज्ञान - हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू

रुचि - संगीत/फोटोग्राफी आदि में

- सन् १९६०-६१ से निरंतर काव्य-लेखन
- विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित
- आकाशवाणी व दूरदर्शन से भी कविताएँ प्रसारित
- ओशो (रजनीश) की दो पुस्तकों की भूमिका-लेखन
- 'पवन गया नीली घाटी में' गीत-संग्रह प्रकाशित

वर्तमान पता - बी- १६, डाक तार कॉलोनी
शान्ति नगर, कानपुर कैण्ट - २०८ ००४

गीत - एक

फागुन, तुममें कोई आकर्षण रहा नहीं ।

अब कहीं हवाओं के संग नदी-कूलों में,
जीवन में रंग भरे उन प्यारी भूलों में

प्यार भरे मन का पावन दर्शन रहा नहीं ।

जेठ की दुपहरी-सा जलता जीवन सारा,
गंधों से भरा-भरा मीठा मौसम खारा,

देखो कल तक मैंने तो ऐसा कहा नहीं ।

टूट रहे ये कन्धे परम्पराएँ ढोते,
तुम भी मधु पर्व नहीं आदमी हुए होते,

तुमने मेरे जैसा समय तो सहा नहीं ।

गीत - दो

बटोही! तेरी प्यास अमोल !
नदियों के तट पर तू अपने प्यासे अधर न खोल

जो कुछ तुझे मिला वह सारा,
नाखूनों पर ठहरा पारा,
मर्म समझ ले इस दुनिया का
सिर्फ वही जीता जो हारा,

सागर के घर से दो आँसू का
मिलना क्या मोल ?

जल की गोद रहा जीवन भर
जैसे पात हरे पुरइन के,
प्यास निगोडी जादूगरनी,
जल से बुझे न जाय अगिन से,

जल में आग, आग में पानी
और न ज्यादा घोल !

गीत - चार

गंध के धनुष खींचे आ गए
मौसम के फूल।
मन में कालीन-सा बिछा गए
मौसम के फूल।

फूल जो लुभाते हैं
प्राण-मन चुराते हैं
कानों में मंत्र-गीत गा गए
मौसम के फूल।

रंग के कथानक हैं
उत्सव के मानक हैं
दिशा-दिशा में कैसे छा गए
मौसम के फूल।

परिचय

नाम	-	विनोद 'तरुण'
पिता का नाम	-	श्री ज्ञान चन्द्र शुक्ल
शिक्षा	-	स्नातक
जन्म-स्थान	-	ग्राम पो शिव सदन, जलालाबाद,
जिला	-	फर्रुखाबाद
पता	-	११७/९१, एल ब्लाक, नवीन नग काकादेव कानपुर - २०८ ०२५
विशेष	-	स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में गीतों का प्रकाशन
जन्म - तिथि	-	१ जनवरी, १९४५

गीत - एक

सूरज कल उतरा था सपनों के गाँव।
आज है अँधेरे के अभ्यासी पाँव।

रस भीनी साधों की एक लता पौढी,
कल तक थी गन्धों से भरी-भरी ड्योढी

अँधियारा हावी है ज्योति रहित गैल,
एक हंस हार गया कौए से दाँव।

तुलसी को पहना कर अगरु धूम साडी
सींची थी दो चन्दन बाँहों ने बाडी

ज्योति कलश किरणों का छलका जिस ठौर
आज वहीं पिघला है लोहा हर ठाँव।

चौक पुरा आँगन नभ मलिन है मुँडेरी
सूखी गुलदस्ते की दूधिया कनेरी

गरमाई साँसों का शीतल सम्मोह
आज वहीं ठहर गयी जलती-सी छाँव।

गीत - दो

मान ऐसे झुक रहा है रूप के आगे।
छाँव जैसे चुक रही हो धूप के आगे।

यह गुलाबी मन कहीं सरसों न हो जाये,
वारुणी क्षण अमर कल-परसों न हो जाय,

झुक गया हो लौह जैसे सेतु बनने को
या अहम अँजुरी बना हो कूप के आगे।

टूट कर बिखरें नहीं मेंहदी रची कसमें
एक खारापन न घुल जाये कहीं रस में

बाँस ने फिर साध ली हो ज्यों अमर बेली
या कि जनवादी झुका हो भूप के आगे।

पास में कुछ और हो केवल न यादें हों
शंख-सीपों की तरह बिखरे न वादे हों

तुम हँसो तो दुख लगाकर पंख उड़ जाये
ज्योंकि हलकापन न ठहरे सूप के आगे।

गीत - तीन

वो लहराते केश जूड़ा खुल रहा होगा।
फिर कपोतों का विमल-तन धुल रहा होगा।

फिर लकीरें उठ रही होंगी बँधे जल में
लाज अब होगी नहीं उस मुक्त आँचल में

फिर पवन ने देह छूकर कुछ कहा होगा।
सिहर कर चन्दन कथाओं में बहा होगा।

सघन-गीले-श्याम कुन्तल तरसते होंगे
याद कर बीती छुअन को बरसते होंगे

चल यहाँ से आत्मा ने फिर कहा होगा
किन्तु तन ने हार कर आगत सहा होगा।

अर्घ्य तुलसी विनय भारी हो गई होगी
याद कर कुछ आँख खारी हो गई होगी

जब सिंदूरी सत्य अँगुली ने कहा होगा
फिर विवशता में कपूरी मन दहा होगा।

गीत - चार

एक लहर नदिया की जैसे बहला गयी।
वैसे ही एक शाम बरसाती मौसम में
एक याद तेरी आ मुझको नहला गयी।

कुछ बूँदें पानी की उजला कर चली गईं
फिर से मेर खण्डित कल का धुँधला दर्पण
सुधि में फिर से उभरा शखों की छवि जैसी
मादक चितवन वाले नयनों का आकर्षण

पतझर में विष डूबे मधुवन के अगों को
एक गन्ध मधुऋतु की जैसे निर्विष कर दे
वैसे ही मेंहदी के रग रँगी भीनी-सी
एक याद जलता तन मेरा सहला गई।

भटक गये राहों में जाने किस कारण से
विश्वासों के पथ पर चल आये अपने प्रण
फिर न कभी जुड पाये फिर न कभी मिल पाये
सागर तट पर बिखरी सीपों से बिखरे क्षण

ज्यों रोमावलियों में विधवा की भय भर दे
बिखरा सिन्दूरी क्षण प्रिय के सस्मरणों का
वैसे ही एक याद बाँह गहे बिछुडन की
जाने अनजाने आ मुझको दहला गयी।

आँसू के रथ पर चढ परछायीं छूने को
सूनी पगडण्डी पर उतरा जैसे काजल
एक घने कुहरे में सर से ले पाँवों तक
अनचाहे डूब गया मै मेरा विन्ध्याचल

वशी की गूँजों में एक नाम था राधा का
कृष्ण की अगुरियों का कम्पन ज्यों दुहराये
वैसे ही एक याद मुरली पर साँसों की
एक नाम तेरा ही मुझसे कहला गयी।

गीत - पाँच

तुम हमारे बिना हम तुम्हारे बिना
आरती के दिये है उतारे बिना।

चाँद की आस्था चाँदनी से जुडी
धूप तो सूर्य की एक पहचान है
जल निमग्ना रही सीप के कण्ठ में
स्वाति की बूँद मोती नहीं प्राण है

एक भटकन जिये हैं अकेले सदा
ज्यों प्रवाहित नदी हो किनारे बिना।

अब क्षितिज – भेंट तो और सत्रास है
मरुथली भूमि पर भागती प्यास है
नेह का बिम्ब हारिल फुदकता हुआ
बिन्दु में सिन्धु का एक आभास है

हम कहीं जी रहे तुम कहीं जी रहे
एक स्वीकार बोझिल नकारे बिना।

हम महाकाव्य के एक आलेख – से
टूटकर यों घटे गीतिका हो गये
चाह वृन्दावनी अनवरत ही रही
कर्म दायित्व से द्वारिका हो गये

सिन्धु हम याद के तुम तपोवन धरा
रह न पायें चरण हम पखारे बिना।

परिचय

नाम		कृष्ण कान्त शुक्ल
पिता	-	स्व प विष्णु दत्त शुक्ल
शिक्षा	-	स्नातक
जन्म-तिथि	-	२० दिसम्बर, १९४६

सन् १९६९ से कविता एव गद्य लेखन

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में फुटकर रचनायें प्रकाशित

भारतीय रिजर्व बैंक में कार्यरत

पता	-	बी- २५, रिजर्व बैंक कॉलोनी, किदवई नगर, कानपुर

गीत - एक

कहाँ पर मिलते धरती - गगन
कहाँ खिलते पतझड में सुमन
लगता तो सयोग मगर है
दोष दृष्टि का फेर समझ का ।

ऐसा तपता हुआ धरातल
जिस पर दिखता लहर-लहर जल
शीतलता पाने जब दौडे
जलता है तलवे तक का तल
उर में भरती जाती उलझन
झकृत होते जाते तन-मन
लगता तो सयोग मगर है
दोष दृष्टि का फेर समझ का।

करना सृजन नष्ट करना क्या
अपने वश में ये बातें है।
करतब अपने खुशियाँ देते
कौतुक मन को हरषाते है
भाती है सिक्कों की खन-खन
सँवर रहे जिससे जड-चेतन
लगता तो सयोग मगर है
दोष दृष्टि का फेर समझा का।

बना इस तरह महल रेत का
बूँदों ने जिसको धो डाला
मस्ती ओढे फिरे यहाँ सब
स्वारथ की पी करके हाला
सरसों मुट्‌ठी से जाती छन
बनता कैसे मृगजल जीवन

लगता तो सयोग मगर है
दोष दृष्टि का फेर समझ कर ।

जितना नभ मे ऊँचे उड़ता
दूरी उतनी ही बढती है
नाव बनी कागज की कब तक
लहरों पर सध कर चलती है
पिया मिलन को जाती दुल्हन
रोती है भर-भर कर सिसकन
लगता तो सयोग मगर है दोष दृष्टि का फेर समझ कर।

गीत - दो

कर सकें घायल नयन जो यह नहीं अब ताब इनमें,
चक्रवातों से समय की धार कुंठित हो चुकी है।

खो गयीं सब धारणाएँ
छल रहीं बस कामनाएँ
पा सकें कुछ शान्ति के पल
है भटकती भावनाएँ

भय बहुत है भर रहा भ्रम चाह सीमित हो चुकी है,
चक्रवातों से समय की धार कुंठित हो चुकी है।

है वही घर और आँगन
जल रही है पर मशालें,
अब कहाँ वे चितवने है
पास बरबस ही बुला लें।

जम गये मन दो ध्रुवों से आह द्विगुणित हो चुकी है,
चक्रवातों से समय की धार कुंठित हो चुकी है।

सोचते है क्या यहाँ पर
दिन कभी ऐसे हुए है
सज रहे यूँ दीप-से थे
आरती में ज्यों दिये है।

बच गयी बस बातियाँ है लौ तिरोहित हो चुकी है,
चक्रवातो से समय की धार कुंठित हो चुकी है।

गीत - तीन

याद के क्षण त्रासदायी भूल पाना सीख लो तुम।
जो जिये पल हो चुके हैं
फिर न रमना उचित उनमें
दर्द दे जाते अमूमन
टीस भर जाते बदन में

स्वप्न जैसा विगत जिससे निकल आना सीख लो तुम
याद के क्षण त्रासदायी भूल पाना सीख लो तुम।

अनुभूतियाँ होतीं सघन
बर्फ-सी तासीर जिनमें
कुछ समय के बीतते ही
राख मढती है तपन में

क्षणिक है अवरोध होते सँभल जाना सीख लो तुम
याद के क्षण त्रासदायी भूल पाना सीख लो तुम।

कौन वो किसने कहा क्या
विषय चर्चा का न यह है
भ्रांतियाँ बढती अधिक है
कलुष की चढती परत है

छोडकर अपना-पराया छल मिटाना सीख लो तुम
याद के क्षण त्रासदायी भूल पाना सीख लो तुम।

गीत -पाँच

नित्य द्वार से गुजरा तेरे
फिर से तुझ से मिल पाऊँ मैं।
एक बार बस देखा तुझको
कुछ पल मिलना हुआ हमारा
बसा तभी से मन में मेरे
मनमोहक वह रूप तुम्हारा
अनमन-सा रहता है यह मन
कैसे इसको समझाऊँ मैं
फिर से तुझसे मिल पाऊँ मैं।
ओट लिये दरवाजे की तुम
एकटक रहीं देखतीं मुझको
मैं भी ठगा-ठगा-सा खोया
अपलक रहा देखता तुझको
नयनों से पा नेह निमंत्रण
काजल बन कर सज जाऊँ मैं
फिर से तुझसे मिल पाऊँ मैं।
काँप रहे वे ओठ तुम्हारे
आतुर-से परिचय पाने को
मानो कहना चाह रहे हों
उर में आकर बस जाने को
जीवन की अनबूझ पहेली
को रह-रह कर सुलझाऊँ मैं
फिर से तुझसे मिल पाऊँ मैं।

परिचय

\- सुनील वाजपेयी

\- स्व उमा शकर वाजपेयी 'उमेश'

ान - माडल हाउस, लखनऊ

थि - १ जनवरी, १९४७

\- स्फुट पत्र-पत्रिकाओं में मात्र।

काव्य-सग्रह प्रकाशित करने की अपेक्षा

\- हिन्दी साहित्य की गीत विधा के प्रति

विगत २७ वर्षों से समर्पित

\- एम ए (हिन्दी), बी एड

य - शिक्षण

\- सूत्र - १२८/७, 'बी' किदवई नगर, कानपुर

गीत - एक

हवाओं पर लिख सका है
कौन अपना नाम।

एक पल को पास पाकर
सुमन यह बोला पवन से
गंध मेरी क्या हुई, सौंपा
जिसे मैंने जतन से

खिलखिला कर हँस पड़ा
निकला न कुछ परिणाम।

हवाओं पर लिख सका है
कौन अपना नाम।

एक दिन लहरें चढ़ीं
नौका लगी कहने पवन से
लाख मेरी राह रोको
लक्ष्य पा लूँगी लगन से

कल्पनाओं से कभी क्या
चल सका है काम।

हवाओं पर लिख सका है
कौन अपना नाम।

दम्भ में डूबा प्रहर
एक दिन बोला पवन से
तू बता क्या कर न पाया
मिल रही धरती गगन से

धूल का घेरा बना, वह
बढ चला उद्दाम।

हवाओं पर लिख सका है
कौन अपना नाम।

देखकर अवसर लगा
इतिहास यह कहने पवन से
मैं प्रकाशित हूँ अनेकों
नाम वाले सकलन से

टूटता तारा दिखा वह
चल पडा निष्काम।

हवाओं पर लिख सका है
कौन अपना नाम।

गीत - दो

हम लहर में विसर्जित दियों से
बढ रहे साथ लेकर उजाले
कौन जाने कहाँ ले चली है
धार हमको सहेजे सम्हाले॥

सामने दृष्टि के जल बिछा है
और उसमें जगत दिख रहा है
हाथ बाँधे दिशायें खडी हैं
क्या पता क्या अतल में लिखा है
योगनी रात की ओढनी में
जग रहे भैरवी स्वर निराले
कौन जाने कहाँ ले चली है
धार हमको सहेजे सम्हाले॥

पंक्तियों में बहे या बिखरकर
साथ सबके अदेखी व्यथा है
एक धागा पिरोकर बने हम
जन्म की बस यही तो प्रथा है
फिर युगल करतलों ने किये हैं
कुछ नये दीप जल के हवाले
कौन जाने कहाँ ले चली है
धार हमको सहेज सम्हाले॥

है सुना ये नदी-पर्वतों से
उस महासिन्धु को जा रही है
इस जगत में निरन्तर जहाँ से
चेतना की प्रभा आ रही है
है नयन में सँजोये सभी ने
कुछ सुनहरे सपन ज्योति वाले
कौन जाने कहाँ ले चली है
धार हमको सहेजे सम्हाले॥

गीत - तीन

मैं शिखर के पार जाना चाहता था,
घाटियों में ही बिखर-कर रह गया॥

उच्चता मेरी न इतनी थी सगी
लाँघ जाता प्रस्तरों की श्रेणियाँ
घात-प्रतिघातें सहेजे डोलता
प्रतिध्वनित स्वर की पहन कर बेड़ियाँ

मैं गगन गुंजार करना चाहता था,
साध्य-रंगों-सा निखर कर रह गया॥

साधना मेरी न पुष्पित हो सकी
किसलयों के पात की ऋतु आ गयी
मैं अवश तन्द्रिल विचारातीत था
पखुरित होती कली मुरझा गयी

मैं सुरभि संचार करना चाहता था,
स्वप्न-दर्पण में उभर कर रह गया॥

कामना सबको यहाँ छलती रही
वेदना की वर्तिका जलती रही
सतरंगा आभास श्वाँसों में भरे
आयु नन्हे पग बढ़ा चलती रही

मैं क्षितिज विस्तार करना चाहता था,
नीर-निर्झर-सा सँवर कर रह गया।

गीत - चार

मिलना हो तो हमसे ऐसे मिलना,
जाने की सुध आते-आते आये॥

जो बीत रहा वह लौट न आयेगा,
जितना खोजो उतना भरमायेगा।
सपनों की बस्ती बसती जायेगी,
यह जग उसको इतिहास बतायेगा।

खिलना हो तो हँसकर ऐसे खिलना,
मधु गंध पवन जाते-जाते जाये॥

कितनी लम्बी है दूरी जीवन की
है कौन यहाँ जो इसको जान सका।
वर्षों-वर्षों की साध सहेजे सब
पल भर का परिचय क्या पहचान सका।

चलना हो तो गति भर ऐसे चलना,
हर श्वाँस सुरभि गाते-गाते लाये॥

आपस की छोटी-छोटी बातों से,
अवसरवादी बगुलों की घातों से।
मछली सागर का साथ न छोड़ेगी,
वह तो जीती है खारे नातों से।

जलना हो तो द्युति भर ऐसे जलना,
आलोक जलद छाते-छाते छाये॥

गीत - पाँच

मै आकर्षण में बँधा-बँधा
सम्मोहित ज्योतिमुखी,

वृत्तों में बँधता गया,
प्रभासित अम्बर छूने को॥

नभ तो असीम
मै घट सीमित
वह निर्विकार
मै उद्वेलित

मै छवि दर्शन में ठगा-ठगा
अभिभूतित ज्योतिमुखी,

रगों में रँगता गया,
प्रकाशित अन्तर छूने को॥

मै परिवर्तित
काया-व्यापी
सत-रज-तम
आवृत अधिवासी

मै द्युतिवर्षण में पगा-पगा
रसपूरित ज्योतिमुखी,

चक्रों में जगता गया
निनादित निर्झर छूने को॥

अणु-अणु गुंजित
महिमा मंडित
मृदु राग सजा
मैं गीत ललित

मैं गति नियमन में सधा-सधा
अनुरंजित ज्योतिमुखी,
शब्दों में रमता गया
अनादित अक्षर छूने को।।

विशेष - प्रस्तुत गीत में ज्योतिमुखी बोधन सूर्यमुखी पुष्प विशेष के लिए किया गया। गीत सूर्यमुखी की जीवन प्रक्रिया पर आधारित है।

परिचय

नाम	-	वीरेन्द्र आस्तिक
पिता	-	श्री घनश्याम सिह सेंगर
जन्म	-	१५ जुलाई, १९४७
जन्म - स्थान	-	गाँव रूखाहार, कानपुर (उ प्र)
शिक्षा	-	एम ए (हिन्दी)
लेखन	-	कविताएँ, १९६५ से १९७५ तक की अप्रकाशित
प्रकाशन	-	वीरेन्द्र आस्तिक के गीत (१९८१)
		परछाई के पाँव (१९८२)
		आनन्द! तेरी हार है (१९८७)

तारीखों के हस्ताक्षर १९९२ एव ओशो रजनीश की विशिष्ट पुस्तक 'केनोपनिषद' में पुस्तक की भूमिका। देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन। आकाशवाणी एव दूरदर्शन से गीतों का प्रसारण।

पूर्व सेवाएँ	-	१९६४ से १९७५ तक भारतीय वायुसेना में कार्यरत।
सम्प्रति	-	स्वतत्र लेखन एव कानपुर टेलीफोन्स में कार्यरत।
सम्पर्क - सूत्र	-	एल- ६०, गगा विहार, कानपुर - २०८ ०१०

गीत - एक

चलो आज यों ही चलते हैं
राह जहाँ तक ले जाए ।

छोड कलुष के ये गलियारे
बैठेंगे उस नदी किनारे
बूँद-बूँद घुल-मिल जाने को
रह-रह कर मझधार बुलाए।

चाहों की कोई जात न हो
बीती बातों पर बात न हो
पीछे छूट गए उन अन्धे
महलों से जी घबराए।

देखो, इस बरगद को क्षण भर
इसकी खामोशी में रह कर
कोई कोयल हममें तुममें
कुहू-कुहू करती आए।

गीत - दो

दो कबूतर
बाग में उतरे गगन से
खुशबुओं से उफनती
सरिता नहाएँ।

झुरमुटों के शामियाने
रश्मियों की झालरें
दूब की कालीन पर
पखुरी प्रसूनों की झरें
पेड चुप थे
पर हुआ क्या?
डालियों से पत्तियों तक
भागती-फिरती शिराएँ।

टहनियाँ मुख चूम लेतीं
नीड का, आमोद में
चू पडे मधु वृक्ष का फल
चिर प्रतीक्षित गोद में
दूर हाहाकार से श्लथ
शून्यवत्
आलिंगनों में
जगमगाती आत्माएँ।

गीत - तीन

उफन-उफन बादल बरसे
तृप्त हुए तृण तरुवर
तब फुनगी-फुनगी
सुमन खुले।

वर्षा के तेज शरों ने
की तन की स्वस्थ धुलाई
निर्मल पवन सुगन्धों ने
पत्ती-पत्ती दुलराई।

नस-नस में रवि पिघल बहा
दर्पण के तब नयन खुले।

तूफानों के उत्सव में
गिरि-घाटी तूफान हुए
वन के सारे समाज ने
किसी छन्द के प्राण छुए।

सौरभ के नासा फैले
हिरना मन के गगन खुले

दिन-दिन के सचित अनुभव
पाक गए वरदान हुए
अन्तिम ऊँचाई के पद
छू पाने को आम चुए

खुशियाँ धूम-धमाल हुई
नव सर्जन के अयन खुले।

गीत - चार

हम जमीन पर ही रहते है
अम्बर पास चला आता है।

अपने आस-पास की सुविधा
अपना सोना अपनी चाँदी
चाँद-सितारों जैसे बन्धन
और चाँदनी-सी आजादी
हम शबनम में भीगे होते
दिनकर पास चला आता है।

हम न हिमालय की ऊँचाई
नहीं मील के हम पत्थर है।
अपनी छाया के बाढे हम
जैसे भी है हम सुन्दर हैं
हम तो एक किनारे होते
सागर पास चला आता है।

अपनी बातचीत रामायण
अपने काम-धाम वृन्दावन
दो कौडी का लगा सभी कुछ
जब-जब रूठ गया अपनापन
हम तो खाली मंदिर भर है
ईश्वर पास चला आता है।

गीत - पाँच

देह के भीतर रहे
औ' देह के बाहर रहे
हम सफ़र में भी रहे
लेकिन महासागर रहे।

देख अपनी कृति, निराकृति
बन्धनों के ढग सब छूटे
रगमहलों के झरोखे
खिडकियाँ औ द्वार सब टूटे।

हम खुले मैदान में भी
कन्दरा होकर रहे

पूर्णिमा के ज्वार-सा पथ
पारदर्शी हो रहे लोचन
ध्यान भाषाहीन जैसा
कौन दर्पण कौन अब आनन

हम सहज यायावरी में
साधना के घर रहे।

चेतना में गन्ध कण नख-शिख
महा उद्यान गाते है
इस समय की धार में ही
खींच समयातीत लाते है

खेल में अस्तित्व के
हम क्षर रहे अक्षर रहे।

परिचय

नाम	-	लोकेश शुक्ल
पिता	-	स्व भगवती प्रसाद शुक्ल
जन्म	-	कानपुर, तिथि - १९ जुलाई, १९४८
शिक्षा	-	बी एस-सी, एम ए
सम्प्रति	-	उप सम्पादक/सवाददाता, दैनिक जागरण, कानपुर
लेखन	-	गीत, गजल, दोहा, विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनायें प्रकाशित
स्थायी पता	-	१२/११६, ग्वालटोली, कानपुर, दूरभाष- २९० ५८९

गीत - एक

कभी धूप में कभी छाँव में
मन के ठौर निराले देखे।

वश न चले मन के पखों पर
जाने कहाँ-कहाँ ले जायें,
जो न दिखे सारी दुनिया को
वही मुझे रह-रह दिखलायें,

कभी आस में कभी प्यास में,
मन के बौर निराले देखे।

मोहित मन झुलसी है काया
फिर भी नेह नहीं बँट पाया
एक बिन्दु पर हार गयी है
जीवन की यह सारी माया

कभी अगन में कभी सपन में
मन के दौर निराले देखे।
मन के ठौर निराले देखे।

गीत - दो

कस्तूरी की बात करो न
एक कहानी हो जायेगी।

फूलों की बाँहों में झूलें
धूप-छाँव के क्या कहने,
सारे-सारे दिन लगते हैं
पहने गधों के गहने,

सकेतों की बात करो न
फिर मनमानी हो जायेगी।

सागर की लहरों को चूमें
अधर रेत के फिर भी प्यासे,
जितने छाँटे उतने बढते
यादों के ये घने कुहासे,

सम्बन्धों की बात करो न,
बात पुरानी हो जायेगी।

मेरे भीतर पतझर, सावन
बादल, बिजली करते बातें,
पीडा की चादर ओढे है
खुशियों की सारी सौगातें,

आतुरता की बात करो न
कुछ नादानी हो जायेगी।

गीत - तीन

आशा का दीप तो जलाओ
कुछ न कुछ तो प्रकाश होगा।

टूट गये सपने तो क्या हुआ
छूट गये अपने तो क्या हुआ,
सबके सब हैं अपनी राह पर,
अँधियारी - उजियारी चाह पर,

जीवन को फूल-सा बनाओ
कुछ न कुछ तो सुवास होगा।

मौसम ने यूँ बदले तेवर
दिशाहीन हो गये कलेवर
रक्त गंध ढो रहीं हवायें
छाती को चीर-चीर जायें

माटी का गीत गुनगुनाओ
कुछ न कुछ तो विकास होगा।

क्या होगा कल किसने देखा
मत डालो माथे पर रेखा,
सम्मुख है जो कुछ अपनाओ
मन ही मन उसको दुहराओ,

श्रम के अनुबंध भी निबाहो
कुछ न कुछ तो प्रयास होगा।

गीत - चार

मैंने वे दिन भी देखे है,
जब पहरों थे सग हमारे
सावन के बादल।
मैंने वे दिन भी देखे है।

छुप न सकीं थीं बातें मन की
ऐसे दरपन थे हम दोनों,
रह-रह कर हम शरमा जाते
कैसे बचपन थे हम दोनों,
जब दिन भर गूँजा करती थी
भावों की पायल।
मैंने वे दिन भी देखे है।

जाने क्या देखा करते थे
आँखों में हम साँझ-सकारे,
अनदेखा, देखा करते थे
अपने-अपने रूप सँवारे।
जब बिन बातों के धुलता था
नयनों का काजल।
मैंने वे दिन भी देखे है।

शायद तुमने देख लिया फिर
अपन को अपने दरपन में,
मेरा सूनापन गुजित है
गीतों की मादक रुनझुन में,
जब आँखों में छाया रहता
गधों का आँचल।
मैन वे दिन भी देख है।

गीत - पाँच

तुम अचानक आ गये मधुमास में
फगुनी रंग छा गये आकाश में।

प्रेम रस की चितवनी पिचकारियाँ
प्राण-वन में खिल उठीं फुलवारियाँ

तब हुआ बेसुध
मगन मन हो गया
स्वप्न रूठे,गा उठे भुजपाश में।

दिन सुनहरी धूप का झरना हुआ,
साँझ मंदिर दीप का धरना हुआ,

राम जाने हर घड़ी
क्यूँ लग रहा
नील नभ जैसे घिरा हो व्यास में।

परिचय

नाम	-	रजन अधीर
पिता का नाम	-	स्व श्री एम जी वर्मा
शिक्षा	-	बी ए
पता	-	२०३ सी/२ए, साहब नगर, कल्याणपुर, कानपुर
व्यवसाय	-	नौकरी (सेवायोजन कार्यालय)
काव्य-सकलन	-	एक टुकडा धूप (प्रकाशन - प्रक्रिया में)
जन्म-तिथि	-	३१ दिसम्बर,१९४९

यात्राओं में रुचि
साहित्य पठन-लेखन
कविताएँ व कहानियाँ देश की लगभग
सभी प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित
कवि सम्मेलनों में भी आना-जाना रहा है।

गीत - एक

कहने को तुम कुछ भी कह लो
पहला दीवा अर्पित करते -
मन भारी हो आया होगा।

अनगिन सम्बोधन होंगे पर,
प्रिय मेरा शब्द नहीं होगा
तन होगा रीति-रिवाजों में –
लेकिन मन और कहीं होगा।

कहने को तुम कुछ भी कह लो
लेकिन का पहला गीत मगर
मर स्वर में गाया होगा।

पायल की मादक रुनझुन से
गूँजा होगा कोना-कोना
दर्पण में देख बिम्ब अपना —
बरबस आया होगा रोना,

कहने को तुम कुछ भी कह लो
चुटकी पहला सिन्दूर लिये
दर्पण भी थर्राया होगा ।

स्वप्निल पलकें झुक जायेंगी,
देहरी पर उगता स्वर सुनते
चेतनता जड हो जायेगी –
बीते पल को बुनते-बुनते,

कहने को तुम कुछ भी कह लो
अपनापन खोने से पहले,
मुझको सम्मुख पाया होगा ।

गीत - दो

एक सन्नाटा
सुबह से -
साथ मेरे हो लिया।

एक पल को भी
अलग
होता नहीं है,
भीड़ में भी वो -
कहीं
खोता नहीं है,

रात भर
जगता-जगाता,
साथ मेरे सो लिया ।

गीत - तीन

नदी का रेत हो जाना,
मुझे अक्सर
अखरता है।

तटों पर बैठकर जिसके,
बनाए जलमहल अनगिन,
नहीं मालूम था मन को -
समय भी गिन रहा है दिन,

निरर्थक लग रहा जीना,
कि आँगन-घर अखरता है।

नदी जल की छुअन से ही,
जगी जो प्यास थी मन में
उसी की तृप्ति की खातिर -
भटकता है सपन वन में

बहुत घबरा रहा है मन,
अकेला स्वर अखरता है।

गीत - चार

एक टुकडा
धूप का,
और हम अंधे हुए।

वो अँधेरे क्या बुरे थे ?
गंध भी सहवास था,
बन्द आँखों में निरन्तर -
रूप था अहसास था,

एक भोला
सच किसी का,
और हम कंधे हुए।

यह विभाजन जिन्दगी का,
दे नहीं कुछ भी रहा,
काँच के घर चिटखना -
क्या कहें कैसे सहा ?

एक गूँगा
मन प्रणय का,
और हम धन्धे हुए ।

गीत - पाँच

पीठ वाला बोझ हो या जिन्दगी
आजकल दोनों हमें खलने लगी।

जन्म से सूरज कभी देखा नहीं,
जो दिया उसका कहीं लेखा नहीं,

आदर्श वाली गध हो या गन्दगी,
आजकल दोनों हमें खलने लगी।

हर सुबह केवल कसाई-सी लगी,
हर समस्या घर-जँवाई-सी लगी,

तो उपेक्षा या किसी की बन्दगी,
आजकल दोनों हमें खलने लगी।

परिचय

नाम	-	अजनी सरीन
पिता का नाम	-	श्री कृष्ण नारायण सरीन
निवास-स्थान	-	४६/१५६, हालसी रोड, कानपुर
जन्म-स्थान	-	कानपुर
जन्मतिथि	-	७ सितम्बर, १९६४
शिक्षा	-	एम एस-सी (रसायन), एल एल बी , एम एड , एम ए (कथक), शोध कार्यरत । बी एड कक्षा में उच्च शिक्षा निदेशालय द्वारा स्वर्ण पदक प्राप्त,
सम्प्रति		प्रवक्ता गाँधी सगीत महाविद्यालय, सिविल लाइन्स, कानपुर

गीत - एक

घायल सडकों के सग मेरा शहर अकेला ही रहता है।
बूढा पेड बहुत रोता है
जब-जब नयी पौध मुरझाती
मीठे सपने सुबक उठे है
डरती आँख सो नहीं पाती
क्या थे क्या हो गये अचानक दरपन से चेहरा कहता है।

जब-जब सम्बन्धों के माथे -
पर सलवट उभरा करती है
गीत उदास हुआ करते है
रह-रह कर आँखें भरती है
बन्द घरों में चीखें गुम है, फिर भी सब होता रहता है।

खामोशी से देख रहे है
सुबह, दोपहर, शाम, रात हम
सब कितने बेचैन लग रहे
शब्द हो गये है कितने कम
शहर हादसा और हादसा सिर्फ हादसा ही सहता है।
घायल सडकों के सग मेरा शहर अकेला ही रहता है।

गीत - दो

इतना है बदलाव कि पावन जल से तुलसी रूठ रही है।
कल तक जिसको सूर्य समझकर
मिलकर हमने विदा किया था
आँख खुली तो लगा कि जैसे
झूठा कोई स्वप्न जिया था

पलकों के उठने-गिरने से छवि की स्मृति टूट रही है।

क्या जोड़ें कल से हम कल को
जीने पर प्रतिबन्ध लगे है
हर पल तो बस यूँ लगता है
साँसों पर अनुबन्ध उगे है

फूल, पत्तियों, शाखाओं की आपसदारी छूट रही है।

एक दीप में भीगी बाती
एक दीप में घुष भरी है
कितनी गुमसुम और अनमनी
सध्या और सुबह गुजरी है

फिर शायद खामोश हवा की प्रतिध्वनि हमको लूट रही है।
इतना है बदलाव कि पावन जल से तुलसी रूठ रही है।।

गीत - तीन

समय से तेज हो तुम तो, तुम्हें क्या रोक पाते हम।

बहुत सोचा हवा को
मुट्ठियों में बाँध लेते हम
गगन से भूमि की दूरी
चरण से नाप लेते हम

हुआ सम्भव नहीं बढते हुए को टोक पाते हम ।
समय से तेज हो तुम तो, तुम्हें क्या रोक पाते हम ॥

सहज जीवन बहुत है पर
नहीं विश्वास कर पाना
हजारों बार जुडकर भी
बिखरते ही चले जाना

अधूरी तग तम-वीथी कहाँ आलोक पाते हम ।
समय से तेज हो तुम तो तुम्हें क्या रोक पाते हम ॥

विवशता है कहीं अब भी
तभी सहमा सवेरा है
भयानक त्रासदी हर पल
समय ने यह उकेरा है

अबूझी नियति धारा में, सरसता को जगाते हम।
समय से तेज हो तुम तो तुम्हें क्या रोक पाते हम॥

गीत - चार

जितनी दूर नजर जाती है, केवल धुआँ नजर आता है।

सोचा था आसन डोलेगा
पाँव जमाते अँधियारे का
झोपडियों में ज्योति जगेगी
मान बढेगा उजियारे का

लेकिन मेरे अहसासों में, अक्सर सन्नाटा गाता है।
जितनी दूर नजर जाती है, केवल धुआँ नजर आता है।

एक कदम आगे बढने में
पीछे कितना कुछ छूटा है
नहीं जुड सकेगा बिखरापन
अब तक इतना कुछ टूटा है

एक छोर को सच करने में, छोर दूसरा झुठलाता है।
जितनी दूर नजर जाती है केवल धुआँ नजर आता है।

जीवन को जीना भी शायद
हम सबकी ही मजबूरी है
जबकि यही सच है रिश्तों के
बीच एक लम्बी दूरी है

और इसी दूरी से ही तो सब कुछ बिंधा-बिंधा आता है।
जितनी दूर नजर जाती है, केवल धुआँ नजर आता है।

गीत - पाँच

मुट्ठी भर रेत भी हाथ में नहीं
चुभ रहे है स्वप्न नयन में गुलाब के ।

अनुत्तरित प्रश्न हम लिये
दब रहे है होठ को सिये
एक बूँद ओस की छुअन
फूल में तपन भरा किये

अब जवाब आपके पास है नहीं
हम हो गये सवाल दूसरी किताब के।

बूँद इस तरह नदी लगी
हर लहर में आहटें जगीं
उग रही है रेत नीर में
आँख देखती ठगी-ठगी

गुमसुम मौसम, गध प्रात में नहीं
मटमैले रग हो गये है ख्वाब के।

जो लहर की आहटों में है
वो न दीखता हमें कहीं
सूर्य से जुडे किरन रचे
एक भी चरित्र है नहीं

बहुतेरे है मकान, घर कहीं नहीं
हल हो नही सकेंगे प्रश्न इस हिसाब के।